

लोक संस्कृति के सजग प्रहरी: पं. विद्यानिवास मिश्र

डॉ० सरोज सिंह¹ एवं दीपमाला²

¹एसो० प्रोफेसर एवं शोध निर्देशक, हिंदी विभाग, सी०एम०पी० डिग्री कॉलेज
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

²असिस्टेंट प्रोफेसर एवं शोधार्थी, हिंदी विभाग, डी० एस० डिग्री कॉलेज
अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

ईमेल - deepmalamishra996@gmail.com

सार

लोक-संस्कृति मानव-जाति के संतुलित विकास के साथ-साथ सृष्टि के समस्त अवयवों के संतुलित समन्वय का दृष्टिकोण लेकर चलती है, जिस प्रकार वेद, उपनिषद लोकोन्मुखी प्रवृत्ति को लेकर चलते हैं, उसी प्रकार लोक-संस्कृति की मूल प्रवृत्ति भी मानव मात्र का कल्याण होती है। लोक-संस्कृति में व्यक्त ज्ञान लोक की सामूहिक अभिव्यक्ति होती है। विद्यानिवास मिश्र व्यावहारिक रूप से धर्म को धारण करने की बात करते हैं। उनका विचार है, कि धार्मिक स्थान पर जाना और आडंबर करना ही धर्म नहीं है, अपितु जरूरतमंद लोगों की सहायता करना, अहंकार रहित होना, एक-दूसरे के प्रति संवेदनशील व नैतिक आचरण करना ही वास्तविक धर्म है।

मुख्य शब्द: लोक, संस्कृति, धर्म, भारतीय परंपरा।

प्रस्तावना

परम्परा और आधुनिकता में विलक्षण सामंजस्य स्थापित करने वाले ललित निबंधकार विद्यानिवास मिश्र का हिंदी साहित्य जगत में विशेष स्थान है। परम्पराएं लोक संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग होती हैं। इन परंपराओं के माध्यम से ही कोई देश अपने लोक संस्कृति की मूल संवेदना को जीवित रख पाता है। 'लोक' के अंतर्गत इस संसार के सभी अवयव समाहित हो जाते हैं। "इस लोक में मनुष्यों का समूह ही नहीं सृष्टि के चर-अचर सभी सम्मिलित हैं, पशु-पक्षी, वृक्ष-नदी, पर्वत सब लोक हैं और सबके साथ साझेदारी की भावना ही लोक-दृष्टि है। सबको साथ लेकर चलना ही लोक-संग्रह है, और इन सबके बीच जीना लोक-यात्रा है। 'लोक' के अर्थात् दिखने वाले कर्मों और देखने वाले लौकिक साक्ष्यों के आधार पर निर्णय लोकायत निर्णय हैं।"¹

'लोक' शब्द के व्यापक अर्थ पर विचार-विक्षेपण करने के पश्चात 'संस्कृति' शब्द के अर्थ पर भी विचार करना आवश्यक है। 'संस्कृति' किसी भी समाज का उसके आचार-विचार, व्यवहार का परिष्कृत-परिमार्जित रूप होता है। 'संस्कृति' शब्द सम् उपसर्ग के कृ धातु से निष्पन्न होता है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार सम् उपसर्ग के आगे 'कृति' अथवा 'कार' शब्द जोड़ देने पर इसके फलस्वरूप सम्+कृति=संस्कृति तथा सम्+कारः =संस्कारः शब्द की निष्पत्ति हुई है। आप्टे के संस्कृत-अंग्रेजी कोश में संस्कृत, संस्कार तथा संस्क्रिया आदि शब्दों की उपलब्धि होती है। संस्कृत का अर्थ है- संस्कार क्या हुआ, पालिश किया हुआ, दोषो तथा त्रुटियों को निकाल कर शुद्ध किया हुआ। इस प्रकार संस्कार का अर्थ हुआ- किसी वस्तु का संशोधन करना, उत्तम बनाना, उसका परिष्कार करना।"2

'लोक-संस्कृति' जन-सामान्य के आचार-विचार, व्यवहार, रीति-रिवाज परंपराओं से संबंधित होती है, जिसमें सबको साथ लेकर चलने की प्रवृत्ति प्रधान होती है। "संस्कृति का अकेले भूगोल, अकेले इतिहास, अकेले मानव-समुदाय से ही सरोकार नहीं होता, वह इन सबसे होता है और मनुष्य के मन में सदियों साथ रहने और एक दूसरे का सुख-दुख बटाने के कारण कुछ संस्कार पड़ते हैं, कुछ स्मृतियां तह की तह बैठती जाती हैं, कुछ अभिप्रेरक मूल्य घर कर जाते हैं, संस्कृति इन सब का निथरा हुआ प्रवाहशील रस है। भारतीय संस्कृति जिन मूल्यों से परिचालित होती रही है, उनके समस्त प्राणियों का कल्याण, सत्य की खोज, सब की मुक्ति की चाह ये प्रमुख हैं।"3

संस्कृति किसी भी समाज में नैतिक तथा मानवीय प्रवृत्तियों को निरंतर विकसित करने वाली प्रक्रिया है। संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण दृढीकरण करें या विकास या उससे उत्पन्न उत्तम अवस्था है। यह मन, आचार अथवा रुचियों की परिष्कृत अथवा शुद्धि है। यह सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना है।"4

वर्तमान परिवेश में पाश्चात्य सभ्यता की अंधभक्ति के कारण कुछ लोग लोक-संस्कृति को पिछड़ेपन का प्रतीक मानकर उससे किनारा कर रहे हैं, और पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगते जा रहे हैं। शुरुआत में तो पाश्चात्य सभ्यता की तड़क-भड़क बहुत प्रभावित करती है, लेकिन एक समय के बाद पता चलता है कि हम अपने समाज अपनी जड़ों से कट गए हैं, जीवन में अवसाद, निराशा और एकाकीपन ही रह गया है, जिसके कारण विभिन्न प्रकार के शारीरिक व मानसिक विकारों का सामना करना पड़ रहा है। "इसीलिए यह कहना कि लोक-संस्कृति का समय चला गया, अब उसके लिए कोई स्थान जीवन में नहीं है अपने ऊर्जा स्रोत को काटकर रख देना है- और यह एक जीवंत संस्कृति के लिए शुभ नहीं है। गनीमत है कि अभी हिंदुस्तान में आवरण का घेरा उतना प्रबल नहीं है कि वह अपने सहज भाव को कभी-कभी ही सही स्मरण न करें, यह अवश्य है कि स्मरण मोहासक्ति के रूप में नहीं होना चाहिए, स्मरण अपने संकल्प के पुनर्नवीकरण के रूप में होना चाहिए। यह संकल्प है मनुष्य का लोक से आलोकमय होने का।"5

"उपनिषद भी एक व्यक्ति विशेष की रचना नहीं वरन् नाना प्रकार के विचारको के चिंतन और मनन में सहभागी सहज जीवन बिताने वाले समाज द्वारा साक्षात्कार है, और लोक साहित्य भी मंगल के लिए निरंतर कर्मशील लोक जीवन की चरम सामूहिक उपलब्धि है। बात कुछ अटपटी लगेगी, पर उपनिषद और लोक साहित्य का मूल स्वर इस माने में एक है कि सहज सत्य की उपलब्धि के लिए दोनों में समान रूप से बेचैनी है।"6

लोक-संस्कृति व्यतीत का संकलन नहीं, अपितु यह मानव विकास के वाह्य व आंतरिक रूपों को स्वस्थ व संतुलित बनाने के लिए निरंतर चलने वाली गतिशील प्रक्रिया है। "हिंदू-संस्कृति की पाचन शक्ति बड़ी ही प्रचंड मानी गई है। इसका कारण शायद यह है, कि जब आर्य इस संस्कृति का निर्माण करने लगे तब उनके सामने अनेक जातियों को एक संस्कृति में पचाकर समन्वित करने का सवाल था जो उनके आगमन के पहले से ही इस देश में बस रही थी। अतएव उन्होंने आरंभ से ही हिंदू-संस्कृति का ऐसा लचीला रूप पसंद किया जो प्रत्येक नयी संस्कृति से लिपटकर उसे अपना बना सके। नीग्रो से लेकर हूणो तक इस देश में आने वाले सभी जातियां इस लचीलेपन के कारण हिंदू समाज में खप गयीं। कालक्रम में हिंदू धर्म के भीतर से ही उनके विरुद्ध एक प्रचंड सांस्कृतिक विद्रोह उठा जिसे हम 'बौद्ध धर्म' के नाम से जानते हैं, किंतु धीरे-धीरे वह विद्रोह भी लौटकर उसी धर्म में समा गया जिससे उसका जन्म हुआ था। हिंदू संस्कृति ने अनेक संस्कृतियों को पीकर अपनी ताकत बढ़ायी है- यहां तक की इस्लाम जो अपने व्यक्तित्व को स्वतंत्र रखने का मंसूबा लेकर चला था वह भी भारत में आकर कुछ परिवर्तित हो गया, यद्यपि भारतीय मुसलमान धर्म के मामले में अपनी सत्ता को स्वतंत्र रखने में बहुत दूर तक कामयाब हुए लेकिन संस्कृति की दृष्टि से वे अब भी भारतीय हैं।"7

भारतीय संस्कृति की संपूर्ण समाज के कल्याण की प्रवृत्ति के कारण इसका प्रचार-प्रसार भारत के साथ-साथ अन्य देशों में भी स्वेच्छा से हुआ। "भारतीय परंपरा की यह विलक्षणता है, कि वह भारत में ओतप्रोत होते हुए भी भारत तक ही सीमित नहीं है, वह किसी एक मजहब ईश्वर की चुनी हुई किसी एक जाति, किसी एक तंत्र (राजनीतिक या आर्थिक) से बंधी नहीं है। उसमें अपने को अतिक्रमित करने की क्षमता है। उसका प्रसार यदि भारत से बाहर हुआ तो, ना तो राजनीतिक दबाव में हुआ, ना आर्थिक कारणों से हुआ, ना मजहबी जोश से हुआ, उसका प्रसार रोपे हुए धान के पौधे की तरह हुआ जिसने अलग-अलग मिट्टी में अलग-अलग रंगत पायी। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है- राम कथा। अलग-अलग जमीन में राम की कहानी उस जमीन की सोंधी गंध लेकर अलग-अलग रूप ग्रहण करती गयी, राम न जाने किन-किन देशों के विपिन- बिहारी हो गए और सीता किन-किन देशों की नारी के लिए स्पृहणीय आदर्श हो गई। राम की भारतीयता ही नहीं रही वे विश्व नागरिक हो गए। भारतीय परंपरा भी राम कथा की तरह किसी एक स्मृति से आबंध नहीं है। यह एक व्यापक मानवीय साझेदारी है। यह बिना किसी को कहीं से बिछुड़ाए किसी भी प्रतिबद्धता से तोड़े एक विशाल जुड़ाव है।"8

भारतीय संस्कृति में एक ऐसी दिव्य शक्ति है कि कितनी संस्कृतियों के प्रभाव में वह आयी, कितने विदेशी आक्रमण हुए, भारतीय संस्कृति को नष्ट करने के कितने प्रयास हुए पर उसे कोई नष्ट नहीं कर पाया। अपनी वसुधैव कुटुंबकम की भावना के कारण अपनी एक शाश्वत पहचान बनाए हुए हैं। आधुनिकता तथा पश्चात्य जीवन शैली के कारण जीवन में बढ़ते हुए अवसाद, निराशा व एकाकीपन के फलस्वरूप मानव के सामने अपनी पहचान खोने का संकट आने लगा तो फिर मनुष्य गांव की ओर और लोक संस्कृति की ओर लौटने को उन्मुख हुआ। "भारतवर्ष में इस शताब्दी के प्रारंभ में ही इसी दृष्टि का प्राधान्य था और समाज में गांव में रहने वाले जनों के प्रति एक रूमानी लगाव पनपा इस कारण लोक साहित्य के प्रति एक अतिरिक्त आकर्षण बढ़ा। लोग वार्ता में रुचि बीसवीं सदी के प्रारंभ से दो मुख्य कारणों से बढ़ी। एक समाजशास्त्रीय या नृतत्व शास्त्रीय दृष्टि का प्रसार हो रहा था, लुप्त हो रही गीतों, धुनों और कलाओं में संग्रही दृष्टि प्रबल हो रही थी, और दूसरा कारण यह था कि गांव की ओर वापस लौटने

का भावनात्मक पक्ष कृत्रिम पुनर्जागरण की प्रतिक्रिया के रूप में उभर रहा था। पहले पक्ष ने लोक की सर्जनात्मक प्रतिभा की उपेक्षा की, उसे लोक साहित्य के माध्यम से एक समानांतर सर्वहारा संस्कृति की खोज करनी थी। दूसरे पक्ष ने लोक साहित्य विशेष रूप से लोक शक्ति को अतिशय प्रशंसा के भाव से देखना शुरू किया। लोग उसके आगे बड़े-बड़े कवियों की प्रतिभा को नगण्य समझने लगे। दोनों कारणों से लोक और साहित्य परस्पर पूरक होते, इसके स्थान पर दो पृथक सताएं या परंपराएं चलायी जाने लगी। शोध के स्तर पर थोड़ा बहुत प्रयत्न हुआ कि अमुक-अमुक कवि में इतना प्रतिशत लोक तत्व है इसकी पैमाइश की जाए, परंतु जातीय प्रतिभा में कोई विभाजन नहीं, इसकी पहचान खोजी गयी। आज लोक साहित्य में सबसे मर्म स्पर्शी अंश काव्य और कथा स्वाद बदलने के साधन मात्र या नए शिल्प के उपादान के रूप में रह गए हैं।"9

धार्मिक दृष्टिकोण की बात की जाए तो वर्तमान में मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, चर्च तथा अन्य धार्मिक स्थान पर जाने वाले लोगों की संख्या बढ़ी है, मानव में धर्म वाह्य रूप से बढ़ा है लेकिन मानव में परस्पर संवेदनशीलता तथा नैतिकता का ह्रास हुआ है। "दूसरी तरफ धर्म इतना अपरिभाषित और इतना सूक्ष्म है, कि वाह्य आचार, अनुष्ठान या संकल्प से उसका कोई मूल्यांकन नहीं हो सकता। एक ओर तो वह आंकड़ों का विषय बनकर मनुष्य की यांत्रिक पहचान बन गया है और तब देखने में एक आसानी जरूर हो जाती है कि सर्वेक्षण से बता सके की मंदिर, मस्जिद, गिरजा व गुरुद्वारा जाने वालों की संख्या में अतिशय वृद्धि हुई है। मनुष्य धर्म की ओर अभिमुख अधिक हो रहा है। दूसरी ओर मनुष्य के प्रति मनुष्य के व्यवहार में, मनुष्य में व्यक्ति के साथ अपने संबंध में ऐसी गिरावट दिखती है कि संदेह होने लगता है- क्या धर्म की वृद्धि के कारण यह गिरावट है या धर्म में ही कहीं गिरावट आ रही है, जिससे परस्पर संबंध इतने खोखले और फरेब से भरते जा रहे हैं।"10

विद्यानिवास मिश्र व्यावहारिक रूप से धर्म को धारण करने की बात करते हैं। उनका विचार है, कि धार्मिक स्थान पर जाना और आडंबर करना ही धर्म नहीं है, अपितु जरूरतमंद लोगों की सहायता करना, अहंकार रहित होना, एक-दूसरे के प्रति संवेदनशील व नैतिक आचरण करना ही वास्तविक धर्म है। "धर्म को दूसरा आश्वासन मिलता है, यहां-वहां अनाम अनपहचाने बिखरे ऐसे लोगों से जो वेश से वैरागी या साधु न हो मन से वैरागी और फ़कीर होते हैं और उससे अधिक संपूर्ण जीवन के अनुरागी होते हैं। आपको अभी भी ऐसे आदमी मिल जाएंगे स्त्रियां अधिक पुरुष कम जो शायद मंदिर, मस्जिद न जाते हों शायद विधिवत कोई पूजा ना करते हों पर जो दूसरे के दुख में कातर ही नहीं होते बल्कि सहायता के लिए दौड़ते रहते हैं अनथक दौड़ते रहते हैं, भोजन में बराबर सबसे पीछे खाते हैं, सबसे अंत में सोते हैं, सबसे पहले उठते हैं और उठते ही सबसे पहले उनकी चिंता करते हैं जो बेजुबान हैं, अबोध हैं, पशु-पक्षी हैं, पौधे हैं, बच्चे हैं, असहाय हैं या बीमार हैं।"11

सारांश

लोक संस्कृति संवेदनशील व नैतिक समाज का आधार होती है। लोक संस्कृति के बिना एक स्वस्थ समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए अपनी भाषा अपनी संस्कृति के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए उसे व्यवहार में लाना मनुष्य के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। यह 'विविधता में एकता' मानव की संवेदनशीलता, सामूहिकता मिलकर सुख-दुख साथ बांटने की प्रवृत्ति को विकसित करती है। लोक

संस्कृति जन सामान्य के सुख-दुख व संघर्षों के बीच अदम्य जिजीविषा व विवेकपूर्ण निर्णय की लोककंठ से मौखिक अभिव्यक्ति की वह धरोहर है, जिससे हमारी भावी पीढ़ी प्रेरणा ग्रहण करते हुए मानवीय मूल्यों के साथ विकसित होती रहे।

संदर्भ सूची

1. लोक और लोक का स्वर- डॉ० विद्यानिवास मिश्र, प्रभात-प्रकाशन दिल्ली (संस्करण-2009) पृ० सं०-19
2. लोक संस्कृति की रूपरेखा- डॉ० कृष्ण देव उपाध्याय, लोक-भारती प्रकाशन (संस्करण-2019) पृ० सं० 10-11
3. स्वरूप विमर्श- डॉ० विद्यानिवास मिश्र, भारतीय-ज्ञानपीठ प्रकाशन (संस्करण-2016) पृ० सं०-53
4. संस्कृति के चार अध्याय (प्रस्तावना)- रामधारी सिंह 'दिनकर' लोक भारतीय प्रकाशन (संस्करण 2021) पृ० सं०-xi
5. लोक और लोक का स्वर- पं० विद्यानिवास मिश्र प्रभात प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण-2021) पृ० सं०- 97
6. वहीं पृ० सं०- 98
7. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह 'दिनकर' लोकभारती प्रकाशन (संस्करण-2021) पृ० सं०- 85
8. भारतीयता की पहचान - पं० विद्यानिवास मिश्र वाणी प्रकाशन (संस्करण-1994) पृ० सं० 75
9. भारतीय संस्कृति के आधार- पं० विद्यानिवास मिश्र प्रभात प्रकाशन, दिल्ली (संस्करण-प्रथम- 2006) पृ० सं० -52
10. वहीं पृ० सं०- 63
11. वहीं पृ० सं० 68-69